(01) नीतिशास्त्र (1) B.A. Part III Paper II

Q. गीता के 'निष्काम कर्म' की व्याख्या कीजिए। इस प्रसंग में काण्ट तथा गीता के बीच सम्बन्ध बतलाएँ।
(Explain 'Nishkama karma' of the Gita. Explain the relation between Kant and Gita in this context.)

Ans :→ गीता के नीतिशास्त्र में निष्काम कर्म की व्याख्या की गई है। सबसे पहले गीता के उपदेश को ही निष्काम कर्मयोग माना है। गीता के अनुसार - निष्काम कर्मयोग प्रवृत्ति और ~~निवि~~ निवृत्ति के बीच, कर्मवाद तथा सन्यास के बीच अथवा भोगवाद और वैराग्यवाद के बीच सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया गया है। गीता में कर्मयोग का तात्पर्य निष्काम कर्म से ही है। निष्काम कर्म तृष्णा रहित कर्म है। कर्म तो प्रत्येक मनुष्य को करना है किन्तु आत्मसंयम के साथ इसे करना चाहिए। साधारणतः हम फल की आशा रखकर कर्म करते हैं। सांसारिक विषयों के प्रति हममें राग-द्वेष होता है और उन्हें पाने या न पाने की कामना से ही कर्म किये जाते हैं। क्योंकि संसार के प्रति आसक्ति रहने से व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है। ~~[illegible]~~ और फल हमेशा हमारी कामना के अनुकूल नहीं होता क्योंकि कर्म फल पर हमारा कोई अधिकार नहीं रहता। इसलिए हमें कर्म कर्तव्य की भावना से करना चाहिए न कि कर्मफल की कामना से। इसलिए इस कर्म को निष्काम कर्म कहते हैं। इसमें कर्म करते हुए भी मनुष्य कर्मों से विरक्त रहता है क्योंकि उसमें कामना का अभाव है। ऐसे कर्म यज्ञ की भावना से तथा आत्म प्राप्ति के लिए किये जाते हैं। इनमें कामना किसी बाह्य वस्तु की प्राप्ति की नहीं अपितु आत्म-प्राप्ति की होती है अतः इन्हें भी निष्काम कर्म कहा जाता है।

मनु के अनुसार- फल की इच्छा से कर्म करना अच्छा नहीं है। और स्वर्ग की कामना से जो कर्म किया जाता

वह कामनायुक्त है। कृष्ण ने 'गीता' के द्वितीय अध्याय के सैंतालिसवें श्लोक में कहा है कि -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

अर्थात - "कर्म करना ही तुम्हारा अधिकार है, न कि कर्म का फल। कभी कर्मफल को अपना हेतु मत बनाओ। कभी अकर्म में अपनी आसक्ति न रखो।" इस प्रकार कर्मवाद की फलाकांक्षा और अकर्मवाद की अकर्मण्यता दूर करने से ~~निष्काम~~ निष्काम कर्मवाद बनता है।

कामनाओं से प्रेरित होकर कर्म करने से या की आशा रखकर कर्म करने से व्यक्ति बंधन में फं है। किन्तु निष्काम कर्म करने से मोक्ष मिलता है। अ व्यक्ति को कर्म बिना फल की आशा रखे करना चाहि क्योंकि यहाँ गीता के निष्काम कर्म और काण्ट के कर्तव्य, क के लिए (duty for duty's sake) में काफी सम है। और स्वर्ग की प्राप्ति की आकांक्षा से किए जाए कर्म भी आसक्तिपूर्ण रहते हैं और इनसे भी व्यक्ति बं ग्रस्त होता है।

निष्काम कर्म वे कर्म हैं जिन्हें व्यक्ति बिन किसी फल की कामना के करता है। क्योंकि ये व्यक्ति को बंधन में नहीं डालते हैं। साथ ही रा मनु भी फल की कामना से किये गए कर्म को नहीं मानते हैं।

<u>गीता कर्मयोग का विश्लेषण</u> :- गीता के निष्क कर्मयोग का विश्लेषण इस प्रकार किया जा स है जो निम्नलिखित है -

(a) मनुष्य को सदैव अपने वर्णगत कर्तव्यों को क रहना चाहिए।

(b) कर्तव्य करने के समय कर्तव्य को छोड़कर अन्य किसी विचार या वासना को अपनी बुद्धि के समक्ष नहीं आने देना चाहिए।

(c) चूँकि कर्मफल पर कर्ता का अधिकार नहीं है, अतः मनुष्य को चाहिए कि वह मानसिक संतुलन रखकर स्वस्थ रूप से कर्म करे।

(d) चूँकि साधारण मनुष्य फल की इच्छा रखकर ही कोई कर्म करते हैं, इसलिए चतुर व्यक्ति को फल-प्राप्ति की इच्छा छोड़कर कर्तव्य करना चाहिए।

(e) क्योंकि उसे इस असमंजस्य में न पड़ना चाहिए कि वह कर्म करे ही नहीं। उसे कर्म तो हर हालत में करना होगा, किन्तु फलबुद्धि से नहीं बल्कि कर्तव्यबुद्धि से करना चाहिए।

अनासक्तभाव से कर्म का आचरण करने से व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त होता है। "कर्म में आसक्त हुआ अज्ञानी जैसे कर्म करता है, वैसे ही अनासक्त हुआ ज्ञानी भी लोकसंग्रह को चाहता हुआ कर्म करे।" वस्तुतः सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किए हुए हैं, फिर भी अहंकार से मुग्ध व्यक्ति अपने आप को कर्ता (doer) मान लेता है।

गीता के अनुसार - आत्मा स्वभावतः कर्ता नहीं है। अज्ञानवश वह अपने को कर्म करने-वाला समझ लेती है। वस्तुतः पुरुष प्रकृति से भिन्न है। अतः सांसारिक बंधन से मुक्त होने का उपाय यह है कि व्यक्ति ईश्वर को विश्व का संचालक मानते हुए, अपने स्वरूप को अच्छी तरह समझते हुए तथा प्रकृति से अपने को भिन्न मानते हुए कर्म करता रहे। इसप्रकार, निष्काम कर्म करनेवाला व्यक्ति

Scanned with CamScanner

संसार में रहते हुए भी सांसारिकता से परे है।

जिस प्रकार कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल से बाहर रहता है। इसलिए आसक्ति त्याग कर और सिद्धि तथा असिद्धि में समान बुद्धि रखकर कर्म करना चाहिए। अपने समस्त कर्मों तथा उसके परिणामों को ईश्वर में अर्पित कर आशारहित और ममतारहित होकर अनासक्त भाव से कर्म करना ही निष्काम कर्म है।

'गीता' मनुष्य की मनोवैज्ञानिक क्षमताओं के अनुसार कर्म करने का उपदेश देती है। संसार में सभी मनुष्य एक प्रकार के नहीं हैं। किसी में ज्ञान की प्रधानता है तो किसी में भक्तिभावना की प्रधानता है तो किसी में कर्म की प्रधानता है। इसलिए गीता इन विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए विभिन्न मार्ग बतलाती है। अतः गीता में तीन प्रकार के मार्ग या योग बतलाए गए हैं :- (i) ज्ञानयोग (ii) भक्तियोग और (iii) कर्मयोग इत्यादि।

ज्ञान की प्रधानता रखनेवाले मनुष्य के लिए ज्ञानयोग या ज्ञानमार्ग है, भक्तिभावना में अभिरुचि लेनेवाले व्यक्तियों के लिए भक्तियोग या भक्तिमार्ग है और कर्म में विश्वास रखनेवाले व्यक्तियों के लिए कर्मयोग या कर्ममार्ग का दरवाजा खुला रहता है। और ये तीनों मार्ग या योग व्यक्तियों को एक ही लक्ष्य की प्राप्ति कराते हैं अर्थात् मनुष्य को मोक्ष पाने के लिए तीन मार्ग बतलाया गया है जो तीनों मार्गों से मोक्ष की प्राप्ति किया जा सकता है।

गीता के नीतिशास्त्र में तीन गुणों का सुन्दर समन्वय किया गया है जो इस प्रकार है — (i) सत्व गुण (ii) रज गुण और (iii) तम गुण। सत्व गुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रज गुण से राग, द्वेष

स्वार्थ और परार्थ के बीच संघर्ष होता रहता है। अत्यधिक बौद्धिक व्यक्ति के सामने इस संघर्ष के अतिरिक्त और भी समस्यायें रहती है। वह प्रत्येक विषय की तह में इतना गहरा उतर जाता है कि उसके सामने हर समय इतने विकल्प रहते है कि यह समझना कठिन हो जाता है कि क्या करें, क्या न करें। ऐसी परिस्थिति में वह कुछ समझ नहीं पाता तथा उसे अपना कर्तव्य नहीं सूझता। इसी परिस्थिति को नैतिक परिस्थिति कहते है। उदाहरण स्वरूप महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सामने भी यही नैतिक परिस्थिति उत्पन्न हुई थी। जब कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ युद्ध के लिए तैयार थी तो अर्जुन ने कृष्ण से अपना रथ दोनों सेनाओं के बीच ले जाने को कहा। दोनों सेनाओं के मध्य से अर्जुन ने सेनाओं का अवलोकन किया और पाया कि कौरव दल में उसके मामा, गुरु पितामह चचेरे और ममेरे भाई तथा अन्य बन्धुबान्धव युद्ध के लिए तैयार खड़े है। उसको देखकर अर्जुन को रोमांच हो आया और गाण्डीव हाथ से छूट गया। बुद्धि मोहित हो गई। उसने श्रीकृष्ण से कहा कि इन सबको मारकर राज्य लेकर क्या करेंगा। यदि इनको मारने से मुझे तीनों लोकों का राज्य भी प्राप्त होता है तो भी मैं इनको नहीं मार सकता, क्योंकि ये हमारे ही परिवार के हैं। इनको मारने से कुल का नाश होगा, कुल नाश से धर्म का क्षय होगा, धर्म के क्षय से पाप बढ़ेगा और स्त्रियाँ दूषित हो जायेगी। तथा वर्ण संकर सन्तान बढ़ेगी और उसके पितरों की भी दुर्गति होगी। हे कृष्ण हम यह नहीं जानते कि हमारे लिए युद्ध करना श्रेष्ठ है या युद्ध नहीं करना। इस प्रकार परिस्थिति को नैतिक परिस्थिति कहा जाता है। इस उदाहरण में अर्जुन अत्यधिक बौद्धिक प्राणी होते हुए भी यह निर्णय नहीं पाता है कि हमें क्या करना चाहिए और कौन सा कर्म है। हमारा नैतिक धर्म क्या है? इस परिस्थिति में वह इतना मोहित एवं रोमांचित हो जाता है कि वह अपना

Scanned with CamScanner

06

के साथ अपना धर्म एवं अपना प्रतीक भी भूल जाता है।

नैतिक परिस्थिति का विश्लेषण करने पर इसके तीन लक्षण या विशेषताएँ दिखाई पड़ते हैं।

(i) नैतिक चेतना (Moral Consciousness) :→ नैतिक परिस्थिति में बुद्धि मोहित हो जाती है लेकिन नैतिक चेतना सजग रहती है। व्यक्ति को अच्छे या बुरे का ज्ञान रहता है। व्यक्ति सिर्फ यह पता नहीं रहता कि बिल्कुल अच्छा क्या है और बिल्कुल बुरा क्या है। उसे बुरे में भी अच्छाई और अच्छे में भी बुराई दिखायी पड़ती है। महाभारत में यही स्थिति अर्जुन का था। वह यह जानता था कि क्षत्रिय का धर्म युद्ध करना है तथा वह यह भी जानता था कि युद्ध के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। परन्तु इस युद्ध में उसे महापाप दिखाई दे रहा था और दूसरी ओर युद्ध न करने से कर्तव्य से गिर रहा था। फिर भी वह अपने बन्धु बान्धव को मारकर राज्यसुख से दूर-दूर होकर खाना और कर्तव्यच्युत होना अधिक उत्तम दिखाई पड़ता था। अर्जुन की चेतना दूर तक सोचती थी। उसे कुल का नाश, कुल का नाश से अधिक अधर्म, अधर्म से स्त्रियों का पतन आदि समस्त विचारधारा में अर्जुन की नैतिक चेतना इतनी सजग दिखाई देती है कि वह अकल्पनीय की भी कल्पना कर लेता है। इस प्रकार नैतिक परिस्थिति में पड़े व्यक्ति की नैतिक चेतना अत्यन्त प्रदीप्त या सजग रहती है।

2. विकल्प (Alternatives) :→ नैतिक परिस्थिति की विशेषता विकल्पों की उपस्थिति है। नैतिक परिस्थिति में कम से कम दो विकल्प अवश्य होते हैं जो बराबर मात्रा में अच्छे या बुरे प्रतीत होते हैं। विकल्पों के संशय के कारण मनुष्य की संकल्पशक्ति काम नहीं करती। इस संशय का मुख्य कारण

Scanned with CamScanner

व्यक्ति और समाज, स्वार्थ और परार्थ का संघर्ष है। महाभारत के युद्ध में अर्जुन को लड़ने से लाभ ही लाभ था। क्योंकि लड़कर मर जाने से स्वर्ग का भोग तथा जीतने से पृथ्वी या राज्य भोग मिलता। इस प्रकार युद्ध करने में उसका सब प्रकार का स्वार्थ था। परन्तु दूसरी ओर समाज का वर्तमान और अतीत था कि युद्ध से कुलनाश, धर्मनाश, स्त्रियों का पतन, पितरों की दुर्गति आदि विकल्पों में अर्जुन के सम्मुख समाज का हीत ~~समाज~~ स्वार्थ सुख से श्रेष्ठ दिखायी पड़ता था। इन दोनों विकल्पों में अर्जुन को मार्ग नही सुझ रहा था। इस प्रकार नैतिक परिस्थिति में विकल्पों की उपस्थिति लाभदायक होती है।

3. स्वतंत्र संकल्प (Free Will) :→ नैतिक परिस्थिति में पड़े हुए व्यक्ति को नैतिक चेतना के कारण अपने दायित्व का आभास होता है, परन्तु संकल्प की स्वतंत्रता के कारण वह दायित्व और भी भारी प्रतीत होने लगता है। वह समझता है कि वह अपने भागी जीवन का विधाता है और भविष्य का अच्छा या बुरा होना उसी पर निर्भर है। यदि मनुष्य अपने को बाह्य अथवा आन्तरिक परिस्थिति से स्वतंत्र न समझे तो फिर नैतिक परिस्थिति का कोई अर्थ ही नही है। नैतिक द्वन्द्व का कारण ही मनुष्य की स्वतंत्रता है, परन्तु फिर भी उसको समाज के बन्धनों का आभास रहता है। महाभारत में अर्जुन युद्ध न करने का निश्चय कर चुका है, परन्तु क्षत्रिय होने के नाते वह युद्ध करना अपना सामाजिक कर्तव्य समझता है और उसको यह आभास बराबर रहता है कि युद्ध छोड़कर वह कायरता कर रहा है। इस प्रकार एक ओर अपनी इच्छा और दूसरी ओर लोक कर्तव्य के बीच पड़ा हुआ कि कर्तव्य विमूढ़ हो जाता है और श्रीकृष्ण के शरण में जाकर उचित मार्ग की ~~~~ याचना करता है।

निष्कर्ष: ~~The End~~ इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कर्ता कर्म करने में स्वतंत्र अर्थात् वह अपनी स्वतंत्र इच्छा शक्ति से या स्वतंत्र संकल्प से कर्म करता है। यहाँ स्वतंत्र संकल्प का तात्पर्य है रहा है - अभा...

Scanned with CamScanner